नईदुनिया



संपादकीय

# जनतंत्र के सामने धनबल की चुनौती

*लोकसभा चुनाव से पहले चुनाव आयोग और अन्य एजेंसियों की सक्रियता से बरामद करीब पौने पांच हजार करोड़ रुपये इस बात की ओर संकेत है कि जनतंत्र के सामने धनबल की चुनौती कितनी बड़ी हो चुकी है। विडंबना देखिये कि स्वतंत्र भारत के आम चुनावों के क्रम में यह अब तक की सबसे बड़ी नकदी की बरामदगी है। चुनाव आयोग का दावा है कि हर रोज सौ करोड़ रुपये की बरामदगी होती रही है। निश्चय ही ये हालात भारतीय लोकतंत्र के भविष्य के लिए अच्छे संकेत नहीं हैं। आज जनप्रतिनिधि संस्थाओं में करोड़पति माननीयों की लगातार बढ़ती संख्या बताती है कि धनतंत्र का दायरा लोकतंत्र में लगातार किस हद तक बढ़ता जा रहा है। इस संकट का बढ़ना बताता है कि हमारे राजनीतिक दलों की तरफ से इस दिशा में कोई ईमानदार पहल नहीं हुई है। नि:संदेह, उस दिन चुनावों में धनबल की भूमिका गौण हो जाएगी, जिस दिन राजनीतिक दल निहित स्वार्थों को छोड़कर इस दिशा में ईमानदार कोशिश करेंगे। 21वीं सदी में भी यदि भारतीय लोकतंत्र में आम चुनावों के दौरान धनबल, बाहुबल, अफवाह तंत्र की दखल तथा आचार-संहिता के उल्लंघन का सिलसिला जारी है तो इसका मतलब है कि हम अभी तक परिपक्व व जिम्मेदार नागरिक तैयार नहीं कर पाए। सवाल यहां धनबल का ही नहीं है, छापों के दौरान बड़े पैमाने पर नशीले पदार्थों की बरामदगी भी एक बड़ी चिंता का विषय होना चाहिए। चुनाव आयोग की तरफ से बरामदगी के जारी आंकड़े बताते हैं कि इसमें 45 फीसदी नशीले पदार्थों की बरामदगी है। ऐसे में इस साल मतदान की प्रक्रिया से जुड़ रहे 1.8 करोड़ नये मतदाताओं को हमें लोकतंत्र की मौजूदा विसंगतियों से दूर रखना है। यदि हम ऐसा कर पाने में सफल होते हैं, तो तभी हम स्वस्थ लोकतंत्र की बुनियाद रख पाएंगे। ऐसे में हमारी प्राथमिकता हो कि हम नोटों की गड्डी की बजाय वोट की पवित्रता को अपनी प्राथमिकता बनाएं। यदि हमारी लोकतांत्रिक व्यवस्था पारदर्शी हो तो देश में स्वतंत्र व निष्पक्ष चुनाव का मार्ग प्रशस्त होता है। सही मायनों में निष्पक्ष चुनाव ही लोकतंत्र की आधारशिला है।*

*बहरहाल, चुनाव आयोग की हालिया सख्ती और विसंगतियों पर तुरंत कार्रवाई व गाहे-बगाहे शीर्ष अदालत द्वारा चुनाव सुधारों के लिये रचनात्मक पहल ने लोकतंत्र के बेहतर भविष्य के प्रति उम्मीद जगाई है। निस्संदेह चुनाव प्रक्रिया कदाचार से मुक्त होनी ही चाहिए। यह आयोग के साथ ही देश के जागरूक मतदाताओं की जिम्मेदारी भी है। इस बात में दो राय नहीं हो सकती है कि किसी भी चुनाव में प्रत्याशियों के लिए चुनावी प्रतियोगिता का मंच समतल ही हो। और साथ ही किसी तरह के भेदभाव से मुक्त हो। नि:संदेह, हमारी मौजूदा कानून व्यवस्था में राजनेताओं के भ्रष्टाचार व आर्थिक अनियमितताओं पर रोक लगाने में जो खामियां हैं, उन्हें दूर करने का प्रयास करना चाहिए। दरअसल, चुनावी प्रक्रिया की विश्वसनीयता बनाये रखने के लिए चुनाव आयोग का सरकार व दल विशेष के प्रभाव से मुक्त होना भी बेहद जरूरी है ताकि वह किसी भी राजनीतिक दल के खिलाफ निष्पक्ष कार्रवाई कर सके। इसमें दो राय नहीं है कि चुनावी प्रक्रिया में किसी भी तरह के भ्रष्टाचार से निपटने के लिए लोकतांत्रिक संस्थानों की स्वतंत्रता, स्वायत्तता, पारदर्शिता, जवाबदेही तथा नागरिकों के जुड़ाव को बढ़ावा देना प्राथमिकता होनी चाहिए। दरअसल, अप्रिय स्थिति से बचने के लिए जहां नियमों व कानूनों को प्रभावी व व्यापक बनाने की जरूरत है, वहीं आधुनिक प्रौद्योगिकी के जरिये हम चुनाव प्रक्रिया की कार्यक्षमता बढ़ाने तथा पक्षपात के आक्षेपों से बचाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। वहीं चुनावी प्रक्रिया में गलत तरीकों से पहुंचने वाले पैसे पर नियंत्रण के लिए आवश्यक है कि राजनीतिक व्यय पर डिजिटल उपकरणों के जरिये सख्त निगाह रखी जाए। हमें अपनी चुनावी व्यवस्था में नियामक ढांचे को मजबूत करके स्वतंत्र व पारदर्शी लोकतंत्र की राह मजबूत करनी चाहिए।*

# जंगलों में मौत के खौफ से नक्सली सरेंडर को मजबूर

दृष्टिकोण

-डॉ. मयंक चतुर्वेदी

जिंदगी की कीमत हर किसी के लिए इतनी अधिक है कि उसकी कोई कीमत नहीं लगाई जा सकती । नक्सली हो या अन्य आतंक के रास्ते पर चलनेवाले लोग, जो भले ही किसी की जान लेने में जरा भी देरी नहीं करते, लेकिन बात जब उनकी अपनी जान पर बन आए तो ये हर कीमत पर इसकी हिफाजत करने के लिए कुछ भी कर गुजरने हैं । पहले नक्सली संगठन भारत की कम्युनिष्ट पार्टी (माओवादी) दण्डकारण्य स्पेशल जोनल कमेटी सरकार से वार्ता करने के लिए तैयार होती है, वह भी सशर्त, फिर जब बात शर्त के साथ बातचीत की नहीं बनती और सरकार साफ चेता देती है कि आमजन, नेता और व्यापारियों को यदि नक्सलियों ने अपना निशाना बनाया तो उन्हें फिर इसका अंजाम भुगतने के लिए तैयार रहना चाहिए, और फिर एक गलती जैसे नक्सलियों के लिए काल बनकर आ गई, देखते ही देखते जंगल से उनका सफाया शुरू हो गया, ऐसे में अब उनके पास जंगल से भागने के अलावा कोई रास्ता नहीं बचा है।

वस्तुत: इन दिनों छत्तीसगढ़ में नक्सलवाद पर सरकार सख्त है। लम्बे समय से चल रहे नक्सली घातों के बाद अब वक्त इस राज्य में सरकार बदलने के बाद प्रतिघात कर नक्सलवाद को समाप्त करने का है। यहां अभी भाजपा की सरकार बने बहुत दिन नहीं बीते हैं, लेकिन भाजपा की विष्णुदेव साय सरकार हकीकत में अपने छत्तीसगढ़वासियों से जो नक्सलवाद के खात्मे का वादा कर सत्ता में आई, वह बहुत शिद्दत से उसे निभाती नजर आ रही है। यही कारण है कि नक्सली बैकफुट पर हैं और इनामी नक्सली तक राज्य से पलायन करने या सरकार के समक्ष सरेंडर को मजबूर हो उठे हैं। अब आंध्र प्रदेश की ओर भाग रहे: ये कहानी उन छह बड़े इनामी नक्सलियों की है, जो हर हाल में जिंदा रहना चाहते हैं। इनकी ये जिंदा रहने की चाह इन्हें छत्तीसगढ़ से भागने को मजबूर करती है और ये आंध्र पुलिस के सामने सरेंडर करते हैं। सभी नक्सली सरेंडर करने के दौरान आंध्र प्रदेश की पुलिस के सामने गुहार लगा रहे थे, मैं नक्सली हूं, मुझे मेरी जिंदगी से प्यार है... इस जिंदगी में अभी बहुत कुछ देखना और करना है ... जिंदा रहना है साहब...। फिर सभी की समवेत आवाज आई, हम सभी नक्सली हैं, हमें गिरफ्तार कर जेल में डाल दो साहब...। कहने को ये ऊपर लिखा वाक्य किसी को भी पटकथा का कोई संवाद लग सकता है, लेकिन यह संवाद इन दिनों छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र राज्य सरकारों की नक्सली सोच पर कड़े प्रहार के बाद चहुंओर साफ घटता नजर आ रहा है।

वास्तव में इस वक्त छत्तीसगढ़ की साय सरकार समेत मध्य प्रदेश की मोहन सरकार और महाराष्ट्र की एकनाथ शिंदे सरकार ने नक्सलियों की वह हालत कर दी है कि अब उनके पास चार ही विकल्प शेष बचे हैं। पहला- सरेंडर करें। दूसरा- राज्य से पलायन कर जाएं। तीसरा- पुलिस एवं अन्य सुरक्षा फोर्स से लड़ाई लड़ें या फिर नक्सलवाद का रास्ता छोड़ राज्य के विकास में अपना भरपूर योगदान देवें। अभी इस घटना को बहुत दिन नहीं बीते हैं, लोकसभा चुनाव के लिए पहले चरण के मतदान से ठीक दो दिन पहले छत्तीसगढ़ में सुरक्षाबलों को बड़ी सफलता मिली और उन्होंने बस्तर संभाग के कांकेर जिले के हिदूर और कलपर के बीच जंगलों में 29 दुर्दांत नक्सलियों को मार गिराया। इनमें शीर्ष नक्सली कमांडर जैसे शंकर राव, ललिता, माधवी और राजू जैसे लाखों रुपये के इनामी नक्सली शामिल रहे।

छत्तीसगढ़ में कुछ ही दिन में 90 से ज्यादा नक्सली मारे गए: छत्तीसगढ़ के मुख्यमंत्री विष्णुदेव साय बताते भी हैं कि लगभग सौ दिनों में 63 मुठभेड़ों में 54 नक्सलियों के शव, 77 हथियार और 135 विस्फोटक बरामद किए गए हैं। 304 माओवादियों को गिरफ्तार करने में सफलता मिली है। 165 माओवादियों ने आत्मसमर्पण किया है। नक्सल संबंधी कुल 26 प्रकरणों को एनआईए को सौंपा गया है। विगत 4 माह में 24 अग्रिम सुरक्षा शिविरों की स्थापना की गई है। निकट भविष्य में 29 नए आधार शिविरों की स्थापना प्रस्तावित है। यह एक तथ्य है कि पिछले तीन महीने में बस्तर के अलग-अलग जिलों में हुई मुठभेड़ों में सुरक्षाबलों ने अब तक 90 से अधिक नक्सलियों को ढेर कर दिया है। बीते चार माह के दौरान सुरक्षाबलों ने अकेले बस्तर संभाग में नक्सलियों के खिलाफ घेराबंदी को मजबूत करते हुए 24 नई छावनियां स्थापित की हैं।

इससे कुछ दिन पहले मध्य प्रदेश के बालाघाट जिले में पुलिस के साथ मुठभेड़ में नकद इनामी दो नक्सली मारे गए । जिनकी पहचान सजंती उर्फ क्रांति और रघु उर्फ शेर सिंह के रूप में हुई । इसके तुरंत बाद मुख्यमंत्री डॉ. मोहन यादव का बयान भी सामने आया। उन्होंने कहा, '29 लाख रुपए के इनामी डिविजनल कमांडर को मारा जाना अपने आप में बड़ी उपलब्धि है। दूसरा, 14 लाख के इनामी नक्सली को मारना मध्य प्रदेश पुलिस की सजगता को बताता है। हम नक्सलाइट मूवमेंट को कभी भी पनपने नहीं देंगे। तीन महीने पहले सरकार बनने के तीसरे दिन भी बड़ा एनकाउंटर हुआ था, अब जब तक नक्सलियों का पूरी तरह से खात्मा नहीं हो जाता, इस प्रकार की कार्रवाइयां होती रहेंगी।' ऐसी ही एक बड़ी कार्रवाई महाराष्ट्र में नक्सल विरोधी अभियान के तहत घटी। यहां के गढ़चिरौली जिले में पुलिस ने चार नक्सली को मार गिराया। इन चारों नक्सलियों पर सरकार ने 36 लाख रुपये के इनाम रखा था। महाराष्ट्र पुलिस को खुफिया जानकारी मिली थी कि एक बड़ा नक्सल ग्रुप लोकसभा चुनावों में बड़ी वारदात को अंजाम देने के लिए गढ़चिरौली के जंगलों में छिपा है, जिसके बाद एक्शन में आई महाराष्ट्र पुलिस ने ये बड़ी कार्रवाई की।

महाराष्ट्र में अर्बन नक्सलियों पर नकेल: महाराष्ट्र नक्सल ऑपरेशन को लेकर पुलिस अधिकारी आईपीएस संदीप पाटिल ने बताया भी कि महाराष्ट्र के नागपुर, पुणे, नासिक, मुंबई,थाने,नासिक और गोंदिया जैसे शहरों में नक्सली घुसपैठ हुई है। माओवादियों से जुड़े अर्बन नक्सली स्लम इलाकों में युवाओं का ब्रेन वास कर उन्हें शासन, प्रशासन के खिलाफ लडाई लड़ने के लिए तैयार कर रहे हैं। पिछले दिनों पुलिस ने ऑपरेशन के दौरान नक्सलियों के गोपनीय दस्तावेज जब्त किए थे। इससे साफ पता चला है कि नक्सली शहरी भागों में खास तौर पर स्लम इलाकों में सक्रिय हैं। ये गरीब युवक जो किसी न किसी वजह से सरकार या सरकारी मशीनरी से नाराज हैं, उन्हें अपना हथियार बना रहे हैं । यह वाकई में चिंताजनक है, लेकिन पुलिस प्रशासन मुस्तैद है, किसी भी नक्सली को नहीं छोड़ा जा रहा है । पुलिस ने अब शहरी क्षेत्रों में सक्रिय नक्सल समर्थकों पर निगरानी बढ़ा दी है। पुलिस लोगों की सुरक्षा के लिए प्रतिबद्ध है।

# परिणाम तय है इसलिए मतदाता उदासीन

नजरिया

-सुरेन्द्र चतुर्वेदी

**भारत जैसे देश में जहां चुनाव को उत्सव के रूप में मनाया जाता रहा है, वहां मतदाता की उदासीनता का कारण क्या हो सकता है ? यह याद रखे जाने की जरूरत है कि 2014 का चुनाव परिवर्तन के नारे के साथ लड़ा गया था। भारत की जनता मनमोहन सरकार की अक्षमता के खिलाफ अपना मन बना चुकी थी, और अबकी बार मोदी सरकार व अच्छे दिन के नारे पर उसने मतदान किया था। 2019 का चुनाव भी पाकिस्तान को सबक सिखाने की मोदी सरकार की क्षमता पर हुआ। यह ऐसा चुनाव था, जिसमें भारतीय जनता पार्टी के कार्यकर्ता पीछे छूट गए थे और मतदाताओं ने मोदी को फिर से प्रधानमंत्री बनाने के लिए एकतरफा मतदान किया।**

अठारहवीं लोकसभा के पहले चरण के लिए 19 अप्रैल को मतदान हो गया। सभी 102 सीटों में से ज्यादातर में मतदान के प्रतिशत में कमी आई है। इससे यह माना जा रहा है कि मतदाताओं में चुनाव के प्रति वह उत्साह और उमंग नहीं था, जिसकी उम्मीद राजनीतिक दल विशेष रूप से भाजपा लगाए बैठी थी । तो क्या भाजपा को इससे निराश होने की जरूरत है? या कांग्रेस सहित अन्य विपक्षी दलों को इसमें से किसी अप्रत्याशित परिणाम की उम्मीद रखनी चाहिए ? दोनों ही प्रश्नों का एक ही जवाब है, नहीं।

यह सही है कि भारतीय जनता पार्टी को मोदी सरकार के कामकाज पर मतदाताओं की ओर से जोरदार समर्थन की उम्मीद थी और विपक्षी दलों को लगता था कि जनता महंगाई और बेरोजगारी के मुद्दे पर सड़क पर आ जाएगी। लेकिन ऐसा नहीं हुआ। इसका एक ही मतलब है कि मतदाता ने परिवर्तन करने से ही इनकार कर दिया। हां, अब बहस सिर्फ इस बात पर हो सकती है कि भाजपा गठबंधन 400 सीटों से पार जा पाएगा या नहीं ?

जहां तक मतदाताओं में उल्लास या वोटिंग प्रतिशत गिरने का सवाल है, तो कोई भी निष्कर्ष निकालते समय हमें इस तथ्य को भी देखना होगा कि क्या किसी एक ही दल का मतदाता निष्क्रिय था ? या सभी मतदाताओं को पहले से ही चुनाव परिणामों का अंदेशा है, इसलिए चुनाव में उसका उत्साह नदारद था। टेलीविजन पर होने वाली बहस को छोड़ दें तो गांव-चौपाल में भी मतदान और प्रत्याशी को लेकर कोई उत्सुकता नजर नहीं आई।

भारत जैसे देश में जहां चुनाव को उत्सव के रूप में मनाया जाता रहा है, वहां मतदाता की उदासीनता का कारण क्या हो सकता है ? यह याद रखे जाने की जरूरत है कि 2014 का चुनाव परिवर्तन के नारे के साथ लड़ा गया था। भारत की जनता मनमोहन सरकार की अक्षमता के खिलाफ अपना मन बना चुकी थी, और अबकी बार मोदी सरकार व अच्छे दिन के नारे पर उसने मतदान किया था। 2019 का चुनाव भी पाकिस्तान को सबक सिखाने की मोदी सरकार की क्षमता पर हुआ। यह ऐसा चुनाव था, जिसमें भारतीय जनता पार्टी के कार्यकर्ता पीछे छूट गए थे और मतदाताओं ने मोदी को फिर से प्रधानमंत्री बनाने के लिए एकतरफा मतदान किया। लेकिन इस बार ऐसा नहीं है। मतदाताओं में उस उत्साह की कमी साफ दिख रही है, जो पहले के दो चुनाव में देखी गई।

तो क्या यह मान लिया जाना चाहिए कि देश के मतदाता को प्रधानमंत्री मोदी पर भरोसा नहीं रहा या वह कथित इंडी अलांयस के नेताओं को प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के विकल्प के रूप में देख रहा है? बहुतांश लोगों को यह प्रश्न विचित्र लग सकता है लेकिन इस प्रश्न का जवाब ही भारत के जनमानस की वास्तविक अभिव्यक्ति है। दरअसल, आएगा तो मोदी ही, यह नारा भाजपा के साथ-साथ विपक्षी दलों के कार्यकर्ताओं के मन में गहरे पैठ गया है। तो भाजपा कार्यकर्ता अपनी जीत देख निश्चिंत होकर चुनाव को आराम से लड़ रहे हैं, तो विपक्षी दलों के कार्यकर्ताओं को यह लगता है कि जब भाजपा ही जीत रही है और जनमानस भाजपा के साथ है तो चुनाव में आक्रामक होने का क्या फायदा ?

ऐसा भी नहीं है कि भाजपा समर्थक हिन्दू मतदाता ही मतदान करने नहीं निकला, भाजपा को वोट नहीं देने वाले मुस्लिम समाज में भी वोट देने के प्रति उदासीनता देखी गई है। मुस्लिम बहुल बूथों पर जहां रात के दस-दस बजे तक मतदान करने के लिए लाइनें लगी रहती थीं, इस बार ऐसे समाचार सुनने में नहीं आए। इस तथ्य पर भी विचार करना ही चाहिए कि बीते सालों में यह पहली बार है जब मतदान केन्द्रों पर तनातनी या लड़ाई-झगड़े के समाचार भी सुनने को नहीं मिले हैं। ऐसा तभी होता है जब पक्ष और विपक्ष चुनाव परिणाम के बारे में आश्वस्त होते हैं। हां, केवल पश्चिम बंगाल ही एक मात्र राज्य है जहां से ऐसे समाचार आए, तो वहां का मतदान प्रतिशत भी अन्य राज्यों के मुकाबले ज्यादा ही रहा।

इस बार के चुनाव से एक बात सिद्ध हो रही है कि न तो विश्व में भारत की रैंकिंग, विकास की गति, जीडीपी दर, आर्थिक प्रगति और विकसित भारत के संकल्प को मतदाता देख रहा है और न ही महंगाई और बेरोजगारी के विपक्षी एजेंडे को मतदाता ने स्वीकार किया है। भारत में विकास कभी चुनाव का मुद्दा नहीं रहा। भारत के चुनाव को सिर्फ जातीय सामंजस्य और राष्ट्रवाद ही दिशा देता है।

आजकल

# बुजुर्गों को सेहत में बड़ा सहारा

**गंभीर** और ऐसी बीमारियों, जिनके इलाज में भारी रकम खर्च करनी पड़ती है, स्वास्थ्य बीमा लोगों के लिए बहुत बड़ा सहारा साबित होता है। स्वास्थ्य बीमा शुरू करने का मकसद भी यही था कि लोगों को स्वास्थ्य पर होने वाले खर्च की चिंता से मुक्त रखा जा सके। मगर इसमें एक बड़ी अड़चन थी कि पैंसठ वर्ष से अधिक उम्र के लोग स्वास्थ्य बीमा नहीं खरीद सकते थे। आमतौर पर ज्यादातर लोगों को इसी उम्र के बाद स्वास्थ्य संबंधी परेशानियां घेरती हैं।

मगर स्वास्थ्य बीमा न खरीद पाने के चलते वे निराश हो जाते थे। फिर, कैंसर, हृदय रोग या एड्स जैसी कुछ गंभीर बीमारियों से ग्रस्त लोगों को इसकी सुविधा उपलब्ध नहीं थी। इसके अलावा, स्वास्थ्य बीमा खरीदने के बाद अड़तालीस महीने तक उसका लाभ नहीं उठाया जा सकता था। अब भारतीय बीमा विनियामक एवं विकास प्राधिकरण ने इन अड़चनों को दूर करते हुए नियम जारी किया है कि पैंसठ वर्ष से अधिक आयु के लोग भी स्वास्थ्य बीमा खरीद सकेंगे। यानी अब किसी भी उम्र में स्वास्थ्य बीमा खरीदा जा सकता है। बीमा कंपनियां अब कैंसर, एड्स और हृदय रोग जैसी बीमारियों की वजह से किसी को बीमा देने से इनकार नहीं कर सकतीं।

बीमा खरीदने के छत्तीस महीने बाद उसका लाभ उठाया जा सकेगा। बीमा क्षेत्र को विस्तार देने और प्रतिस्पर्धी बनाने के मकसद से इस क्षेत्र में निजी बैंकों और विदेशी कंपनियों के लिए सौ फीसद निवेश का रास्ता खोला गया था। फिर बीमा कंपनी बदलने की भी छूट दे दी गई थी। निस्संदेह इससे बीमा कंपनियों में प्रतिस्पर्धा बढ़ी और लोगों को इसका लाभ मिलना भी शुरू हो गया। मगर स्वास्थ्य बीमा के मामले में कई तरह की अड़चनें बनी हुई थीं। उम्र और कुछ गंभीर बीमारियां इस रास्ते में बड़ी बाधा थीं। अब उनके हट जाने से निस्संदेह बहुत सारे लोगों के लिए आसानी हो जाएगी।

# नक्सल विरोधी कार्रवाई पर हमदर्दी भरा दृष्टिकोण क्यों?

डॉ. रमेश ठाकुर

छत्तीसगढ़ के कांकेर में पिछले सप्ताह केंद्रीय सुरक्षाकर्मियों ने एक ऑपरेशन के तहत बड़ी संख्या में नक्सलियों को मार गिराया। सूचनाएं थी कि नक्सली चुनाव में गड़बड़ी करने वाले थे। उनका निशाना पोलिंग बूथ थे। उनके पास से बड़ी मात्रा में हथियार और गोला बारूद बरामद हुआ। नक्सलियों पर इस कार्रवाई को लेकर एक दफा फिर कांग्रेस ने प्रमाणिकता पर सवाल उठाए हैं। वाजिब सवाल ये है कि आखिर चुनाव के बीच नक्सल और सुरक्षाबलों के बीच चले इस संघर्ष को राजनीतिक रंग देने में किसका भला होगा? भूपेश बघेल तो मुठभेड़ को फर्जी भी बता रहे हैं। वहीं, कांग्रेस प्रवक्ता सुप्रिया श्रीनेत ने भी बिना सोचे समझे नक्सलियों से हमदर्दी जताई। हालांकि, विरोध होने पर अब दोनों अपने बयानों को लेकर लीपापोती करने में लगे हैं। कुछ विपक्षी नेताओं ने इससे पूर्व भी नक्सलियों को शहीद बताकर उनके प्रति हमदर्दी जताई थी। यह तो जगजाहिर है ही कि कांग्रेस नक्सल आंदोलन के हिंसावादी रवैये की प्रति शुरू से नरम रही है। जबकि, कायदे से देखें तो नक्सलियों ने उनके भी कई नेताओं को मौत के घाट उतारा है। बहरहाल, कांकेर मुठभेड़ को लेकर कांग्रेस और सत्तारूढ़ पार्टी के बीच जमकर वाकयुद्ध जारी है। पर, नक्सलवाद की समस्या चुनाव तक ही सीमित नहीं रहने वाली? क्योंकि देश विगत 70 वर्षों से नक्सल आतंकवाद झेलता आया है। अब समय की मांग है कि इसे जड़ से खत्म किया जाए। केंद्र की योजना फिलहाल इसी ओर अग्रसर भी है। अभी तक हजारों नक्सली मारे गए हैं जिनमें बड़ी संख्या में हमारे जवान भी शहीद हुए हैं। इसलिए इस समस्या को राजनीतिक चश्मे से देखने कतई औचित्य नहीं? इस समस्या को जड़ से मिटाने की राष्ट्रीय नीति के प्रति सभी को एक समान विचार रखना चाहिए। केंद्र सरकार ने गत दस वर्षों में नक्सल उन्मूलन की नीति पर एक निरंतरता बनाया हुआ है जिसके बेहतरीन परिणाम भी मिले हैं।

आंकड़ों पर गौर करें तो 2004-14 के यूपीए के दस सालों के नक्सली हमलों या मुठभेड़ों में 1,750 सुरक्षा बलों के जवानों की शहादत हुई थी, लेकिन 2014-23 में करीब 72 फीसदी तक कमी आई। इस दौरान 485 सुरक्षाबलों के जवानों की जान गई। इसी अवधि में नागरिकों की मौत की संख्या भी 68 प्रतिशत घटकर 4,285 से 1,383 हुई। कांग्रेस सरकार अपने वक्त में ये तय नहीं कर पाई थी कि वह आर्म्ड वाम विद्रोह के खिलाफ केंद्रीय नीति किस तरह की रखे। कांग्रेस के नेताओं में इस पर एकमत था ही नहीं। प्रधानमंत्री के रूप में मनमोहन सिंह उच्चस्तरीय सुरक्षा सम्मेलनों में तो यह कहते रहे कि नक्सलवाद देश के लिए खतरा है। पर, गृहमंत्री के रूप में चिदंबरम ने सशस्त्र विद्रोह के प्रति कोई आक्रामक नीति कभी बनाई ही नहीं? मध्य प्रदेश के मुख्यमंत्री रहे दिग्विजय सिंह ने नक्सलवाद के मूल कारणों को ढूंढने के अपने सिद्धांत बना लिए और उसी की वकालत करते रहे।

सन 2009 में यूपीए सरकार ने ऑपरेशन ग्रीन हंट शुरू किया था। तब कहा गया था कि सरकार नक्सलियों को पूरी तरह खत्म कर देगी। सीआरपीएफ को इसके लिए खास तरह के टास्क दिए गए। इस अभियान में भारतीय सेना को भी लगाया गया। लेकिन, यह ऑपरेशन सुरक्षा बलों के लिए ही काल बन गया। अप्रैल-2010 में नक्सलियों ने दंतेवाड़ा में एक ही दिन 76 सीआरपीएफ के जवानों की हत्या कर दी। घरेलू मोर्चे पर यह ऑपरेशन ब्लूस्टार के बाद सुरक्षाबलों की सबसे ज्यादा मौतों की यह घटना बन गई। यूपीए में तीन-तीन गृह मंत्री बनाए गए, शिवराज पाटिल, चिदंबरम और सुशील शिंदे। नक्सलवाद को लेकर तीनों की अपनी अलग-अलग राय थी। यूपीए सरकार में ही हिंसक नक्सलियों को गुमराह और नेक इरादे वाले लोगों के रूप में वर्णन किया गया। यूपीए सरकार ने ही मलकानगिरी के कलेक्टर विनील कृष्णा के बदले में आठ माओवादियों को रिहा किया। उसी दौरान माओवादी समर्थकों का एक पढ़ा लिखा वर्ग भी तैयार हुआ, जिन्हें आज अर्बन नक्सली कहा जाता है। फिलहाल केंद्र सरकार अब ये दावा करती है कि उसने हिंसक वाम आंदोलन और उग्रवाद खिलाफ जोरदार अभियान छेड़ा है।

नक्सल वामपंथी उग्रवाद को किसी भी तरह की रियायत नहीं दी जाएगी। 2015 में मोदी सरकार ने आतंकवाद और उग्रवाद के खिलाफ 'राष्ट्रीय नीति और कार्ययोजना' शुरू की थी, जिसमें हिंसा के प्रति 'जीरो टॉलरेंस' की बात कही गई थी। सरकार ने उसी समय से किसी भी तरह की हिंसा से निपटने के लिए पुलिस और सुरक्षाबलों का आधुनिकीकरण करना शुरू कर दिया। प्रशिक्षण के लिए विशेष तौर पर फंड जारी किए। इसके साथ ही सरकार ने हिंसा प्रभावित राज्यों की सहायता के लिए विशेष बुनियादी ढांचे को मजबूत करने की योजना पर काम शुरू किया। सुरक्षा जरूरतों में आने वाले खर्चों के लिए अलग से धनराशि जारी की। इतना ही नहीं इस पूरे काम की निगरानी करने के लिए सरकार ने अपने दूसरे कार्यकाल में अमित शाह के नेतृत्व में गृह मंत्रालय में एक अलग डिवीजन बनाया। इसे वामपंथी उग्रवाद प्रभाग का नाम दिया गया।

वामपंथी उग्रवादियों का मुकाबला करने और राज्य पुलिस बलों की क्षमता को बढ़ाने के लिए राज्यों में इंडिया रिजर्व बटालियन का भी गठन किया गया। लगातार ऑपरेशन से माओवादियों और नक्सलियों के पांव उखड़ गए हैं। हिंसा और अपराधों के आकड़े में लगातार कमी आई है। वर्ष 2014 से 2023 के बीच में वामपंथी उग्रवाद से संबंधित हिंसा में 52 फीसदी से अधिक की कमी आई है। इस तरह कुल मौतों में भी 69 फीसदी की कमी आई है। सुरक्षाबलों के हताहतों की संख्या इस समय काफी कम है। यह एक बड़ी उपलब्धि है। ये तभी संभव हुआ जब केंद्रीय गृह मंत्रालय ने केंद्र और राज्यों के बीच एक सहयोगात्मक दृष्टिकोण का मार्ग प्रशस्त किया, जिसके चलते ही विगत वर्षों में उग्रवादी गुटों के कई सदस्य सरकार के सामने आत्मसमर्पण करने को भी मजबूर हुए।